निर्मला पुतुल की कविताएं

स्वर्गवासी पिता के नाम पाती

बाबा! बहुत याद आते हो तुम
बहुत याद आते हो तुम
बैठे रहते थे तुम घर के सामने
चन्दन काका की देहरी पर
पहरेदार की तरह हाथों में डंडा पकड़े।
जवान बेटी का ख्याल कर
रात-रात भर सोते नहीं
हिदायत देतें रहते थे
बेवजह घर से बाहर नहीं निकलने की
पियक्कड़ घूमते रहते हैं कुलही में
काम-धाम पूरा कर
घर आंगन में ही खेलो-कूदो, अपने दोस्तो संग
मुझे याद है एक बार की घटना
बाहर कुलही देहरी पर लगा रही थी मिट्टी
और तुम हमेशा की तरह बैठे थे
चन्दन काका की देहरी पर
कुलही से गुजरते पियक्कड़ ने
स्कर्ट खींच कर शरारत की थी मुझसे
देहरी से कूदकर लाठी लिए
दौड़ाया था तुमने, पूरी बस्ती में
और तब तक पीटा था उसे
जब-तक थक नहीं गए थे तुम्हारे हाथ।
चन्दन काका की देहरी भी धंस चुकी है अब
देहरी के बगल में ही एक मांझी थान
बाजार के ठेकेदार ने बनवा दिया है
दिन भर जुआरियों की जमात लगती है
खुलेआम पकड़ाधकरी होती है
इसलिए बाहर कुल्ही का दरवाजा बंद रखती हूं हरदम
तुम होते थे तो घर आंगन में
रात-रात भर गर्मियों में खटिया बिछाकर
सोती थी बेफिक तुम्हारी बगल में
और देर रात तक करती रहती थी
चांद-सितारों से खूब बातें।
एक रात तो किसी मनचले ने
बगल गली से छुपकर मारा ढेला
जो तुम्हारे खटिया में जा गिरा था
चोट लगी थी तुम्हें खून निकल आया था
दहाड़ उठे थे तुम
और दीवार फांदकर दौड़ा लिया था उसे
उस दिन से तुम तीर धनुष लेकर सोते थे।
अब तो यहां बाजार के पियक्कड़
घर आंगन में कब्जा कर लिए हैं
छिप जाती हूं अपने ही घर आंगन में डर से
सो जाती हूं कई बार भूखे-प्यासे।
रात-रात भर खुला रह जाता है बाहर का दरवाजा कभी-कभी तो
आंगन का दरवाजा भी
आधी रात में सुनाई देती है
किसी का फसार-फुसुर और
अपने बंद दरवाजे की फांक से झांकती हूं
एक मोटा लंबा आदमी
अपनी फूलपैंट की चैन लगाते हुए
एक महिला उसके हाथों में
भर लोटा पानी और साबुन देते हुए।
बाबा!
इन्हीं लोगों ने छीना है बचपन
छीने है.. मेरे बिनब्याही सपने
मेरे हिस्से का वो खुला आकाश
मेरी उन्मुक्त हंसी, मेरी जवानी
कैद होकर रह गयी हूं मैं
एक कमरे में जीवन गुजार रही हूं
बाबा! बहुत याद आते हो तुम.....।

□□

तुम्हारे एहसान लेने से पहले सोचना पड़ेगा हमें

अगर हमारे विकास का मतलब
हमारी बस्तियों को उजाड़कर कलकारखाने बनाना है
तालाबों को भोथकर राजमार्ग
जंगलों का सफाया कर ऑफिर्स कॉलोनियां बसानी है
और पुर्नवास के नाम पर हमें
हमारे ही शहर की सीमा से बाहर हाशिए पर धकेलना है

तो तुम्हारे तथाकथित विकास की मुख्यधारा में
शामिल होने के लिए
सौ बार सोचना पड़ेगा हमें।
सोचना पड़ेगा, अपनी झोपड़ी के बदले
तुम्हारा आवास लेने से पहले
तुम्हारे हर प्रस्ताव पर गौर करना पड़ेगा
समझना पड़ेगा न समझ में आने वाली बात
और तुम्हारें समझाने के तरीकों को भी।
समझना पड़ेगा
कि मेरे गांव को मुख्य मार्ग से जोड़ने के लिए
सड़क बनाना चाहते हो तुम
या मेरे गांव तक पहुंचने के लिए।
हमें बाजार उपलब्ध कराना है
या बाजार को हम तक पहुंचनें का देना है रास्ता।
हमीं से हमारे पत्थरों को तोड़वाकर
शहर ले जाने का इरादा है तुम्हारा
या दिख गई है किसी नयी खदान की संभावना
या फिर हमारे जंगलों की लकड़ियों
और गांव की लड़कियों पर लगी गई है तुम्हारी नजर
ठीक-ठीक समझना पड़ेगा हमें।
संशय में हूं कि, तुम सचमुच हमारा विकास चाहते हो
या फिर अपने और अपने उन पालतु लोगों का
जो इन दिनों विकास का नया-नया मतलब समझा रहे हैं हमें। जानती हूं तुम्हे
बहुत कड़वा लगता है असहमति का स्वर
बढ़ जाएगा एक और नाम तुम्हारे विरोधियों की सूची में।
तुम तर्क दोगे
बताओगे हमारे ही लोगों को हमारे बारे में
कि उनका विकास नहीं होने देना चाहते हम
विकासरोधी है हमारी सोच
जंगली असभ्य और पिछड़े ही बने रहना चाहते हैं हम।
पता है, तुम्हारी हर तीसरी बात में
आएगा जिक्र/विकसित लोगों और उनके देशों का
उनके सामने खड़ा कर बताओगे तुम
कि कितने पिछड़े हैं हम !
पर अफसोस,
तुम कभी नहीं बताओगे कि
किन शर्तो पर हमारा विकास करना चाहते हो तुम
चांद की तरह दिखाओगे तुम
विकास के मॉडल को,
उसके गड्ढों और परजीवीपन की चर्चा
तक न होगी तुम्हारी बातों में।
जानती हूं तुम यह भी छिपाओगे कि
तुम इस विकास के मॉडल के पीछे
किसका उर्वर मस्तिष्क काम कर रहा है।
छिपाओगे उन विकसित लोगों और देशों के विकास का राज
कि किस तरह तुम्हारे ही माध्यम से
हमारे संसाधनों को हमसे छीनकर
विकास के ऊंचे शिखर तक पहुंचे हैं वे
जानती हूं, सब जानती हूं।
क्षमा करना,
नकारती हूं तुम्हारे इस विकास प्रस्ताव को
जो पटना, रांची, दिल्ली से बनाकर लाए हो तुम हमारे लिए।

❏❏

मोबाईल न. 7250805313

बीरेन्द्र कुमार महतो की कविताएं

देखा क्या...?

आकांक्षाओं और आस्थाओं से परे
निढाल, मौन
देखा है कभी
उस इंसान को?
देखा है,
फुटपाथ पर पड़ी
नंगी-अधनंगी
उस बेबस और लाचार
महिला को,
देखा है,
भूख से बिलखते
मासूम चेहरों को
जिनकी तस्वीरें
होती हैं विकास के
सबसे उपरी पन्नों पर।
देखा है,

सरेआम लुटते
और बिकते
अपनी मां-बहनों को?
देखा है,
इंसान को
इंसानियत की नजर से,
जिनकी तस्वीरें बड़ी चाव से
छापते और उस पर
रिरयाते हैं,
वाहवाही लुटते
उनकी नामों पर,
घूरते हैं उनकी
जख्मी काया को
किसी भूखे भेड़िये की तरह।
देखा है,
उन झोपड़ियों की ओर झांककर
जो पीढ़ियों से सहते रहे हैं,
तुम्हारी यातनाएं,
विकास और टेक्नोलॉजी के नाम पर
पल-प्रतिपल छलते रहे,
रचते रहे क्षण-प्रतिक्षण षड्यंत्र,
निचोड़ डाली पूरी की पूरी देह
भीगे कपड़े की तरह,
ढाते रहे जुल्म
सांस रुकने तक
तड़प न पाया
चाह कर भी
मौन था, मौन ही मरता रहा।
पर क्या,
महसूस की है कभी तुमने
उनके अंदर की आकांक्षा
जानना चाहे हैं कभी
उनके सपने, उनके अरमान..?
देखा है,
फुर्सत के क्षणों में,
झांककर अपनी अंतर्आत्मा में?
नहीं?
तो फिर देखा क्या है तुमने...?

देख कर ये क्रूर लीला

माथे पर कलंक गोद में बच्चा
भटक रहा रफ़्ता-रफ़्ता
देख रहा नजारा
ये जग सारा
लुट रही अबला नारी
बीच बाजार,
कभी यहां, कभी वहां,
जब से हुई वो सयानी
पड़ गया पीछे बड़ा राजघराना
गांव-घर की बहू-बेटियों को
बनाया अपना आशियाना,
देख, भूखे भेड़ियों ने
नोच-चोथ
उजाड़ दिया जीवन सारा,
रखे थे छुपा दिल में
कई-कई सपनें,
तोड़ दिए सब एक ही झटके में,
मां-बाबा के अरमानों का
कर दिया खून कतरा-कतरा,
तन ढकने को भी
नहीं मिल रहा अब तो चिथड़ा
फूटी किस्मत ले
धुकुड़-धुकुड़ अपना जीना,
कभी ईंट भट्ठे में
कभी रेस्तरॉ में,
कभी वेश्यशाला में
कभी नचनी घर में
तो कभी चौक-चौराहे में
जल रही है
तप रही है
जीवन के हर मोड़ पर,
जल रहा है तन-मन
सूखी डालियों सा
जिन्दगी जैसे जिन्दा लाश बन
सिर्फ जिये जा रही,
नारी होने का दर्द झेल रही

पल-पल गिरती संभलती
कोख में लिए
बाबू साहेब की निशानी,
मां रूपी नारी की
देख कर ये क्रूर लीला
धृतराष्ट्र बना जग सारा..!

स्मृतियों कब्र से

एक बार स्मृतियों के आस-पास
टहल रहा था,
अचानक कब्र की ओर
देख उग आई थी मेरे भीतर
उनकी याद..!
कब्र के पास जाकर मैंने
कब्र की छाती पर देखा
कब्र के ऊपर
उग आये पौधों का हिलना,
पत्तों की सरसराहट
और
कब्र के ऊपर
उग आए उड़हुल के फूल की
मुस्कुराहट से,
बीते दिनों की स्मृतियां
ताजा हो गई,
और
वह मानो कुछ कह रहा हो...!

❑❑

मो.09934133172

अलोका की कविताएं

एचबी रोड से कल्बरोड तक

उस वक्त तक हम
अकेले-अकेले थे
अलग-अलग बटे थे।
अपनी व्यथा
दूर जाकर
उसके मंच में कहते थे।
उस वक्त तक हम
अकेले-अकेले ही थे।
अलग-अलग
विषय, विश्व,
विकास के लिए
बस एक वक्त तक
एक विचार फिर......

उस वक्त तक हम
अकेले थे।
अलग-अलग
माटी-पार्टी और अपना राज्य
एक सपना
सब देखते रहे..........

उस वक्त तक हम
अकेले थे।
अलग-अलग

उसकी ही मंच से
अलग राज्य के संघर्ष के लिए
आवाज लगायी हमने
भूखे रहकर कसमें खाई
हमने।
वो वक्त आया
जब हमने
मिलकर संघर्ष के रास्ते को
चुनौती पूर्ण बनाया
विकासशील और विकसित
देश को
चुनौतियों से ललकारा
अपना अशियाना बनाया
एचबी रोड से कल्ब रोड
तक

झारखण्ड में सामूहिक
जीवन और
आंदोलन में
औरतों लड़कियों का

योगदान पहचान का सवाल
रोजगार का सवाल
जल-जंगल-जमीन का
सवाल निरंतर सोचने लगे थे
कल्ब रोड से एचबी रोड
तक

निरंतर सोच ने जन्म दिया
कोयलकारों का आंदोलन
नेतरहाट फिल्डिग फाइरिंग रेंज
में नगाड़े की गूंज ने
पूरे विश्व में विस्थापन और
विकास के बीच
एक सवाल खड़ा कर दिया
मानव अस्तित्व का सवाल
फिर उठता ही गया
सवाल दर सवाल
सवालों के बीच
संघर्ष जारी रहा
जंजीरों को तोड़ा
मुक्त हुआ झारखण्ड
हमने जीत ली एक आजादी
देशज जनता और देशज
विकास की

लेकिन ये क्या?
देशज के सर पर दिकू..।
इधर लूट उधर लूट
अंतर मिट गया
हमारी जमीन हमारा गांव
हमारी संस्कृति, हमारा जंगल,
हमारे पशु-पक्षी
सब लूट के ले जा रहे हैं।

छिनता जा रहा है
हमारा सब कुछ
आज हम फिर
अकेले-अकेले
अलग-अलग क्यों?
क्या खत्म हो गये?
विकास और विनाश के
सवाल
पूंजी और पानी के सवाल
पक्षी और पूर्वज के सवाल

तब पसरे हुए सन्नाटे के बीच
अलग-अलग
अकेले-अकेले क्यों हैं।
कल्ब रोड से एचबीरोड
तक

सरहुल

मांदर की थाप
हडिया
झूमर
और सरई फूल
आया प्रकृति परब सरहुल
सरई का सुगंध
जंगल-जंगल
बोने-बोने
और खेत-खलिहान
सब मस्ती में मग्न
उल्लास
भक्ति
और प्रेम
आस्था के कई रंग
प्रकृति के संग
शुद्ध हवा के झोंके
रंग बिरंगे फूल
आया प्रकृति परब सरहुल

❑❑

एच.बी. रोड थड़पखना
रांची 834001
9430194879

तरुण कुमार लाहा की कविताएं

प्यास

ओ प्यासी धरती
तुम, कब तक
अपने कंठ को
प्यासी रह सुखाना चाहोगी
कब तक झुलसाना चाहोगी
कोमल शरीर को
क्या, तुम्हारे हृदय को चीरकर
गुजरने वाली मयुराक्षी[1]
बुझा नहीं सकती
तुम्हारी प्यास
क्या?
हरे-भरे जंगल
नहीं बुला सकते
मंडराते बादल

ओ नदी
तुम, पहाड़ों से क्यों नहीं कहती
कि वे अपने
लौह रूपी चट्टानों से
तुम्हें बांध दे
जैसे राम ने
बांधा था सागर को

ओ सागर
तुम, वनों से क्यों नहीं कहते
बादलों को बुलाए
उन्हें झुमाए
फिर बरसाए
क्या, इतने से
प्यास नहीं बुझ सकती।
तुम्हारी।

1-मयुराक्षी (नदी का नाम)

फैसला

इतने खामोश क्यों हो गए चुड़की
तुमने तो जन्म दिया
पथरीली राहों से गुजरकर
पढ़ना सिखाया।
तुम सोच रही हो चुड़की
बेटा बड़ा होकर
तीतर[2] का शिकार करेगा
ताड़ी-हंड़िया[3] पीयेगा
फिर, गांव की लड़की फांस ब्याह रचाएगा।
नहीं चुड़की
तुम्हारा बेटा
ऐसा सोच ही नहीं सकता
तुम्हारे बदनाम होने का ख्याल है उसे
अपने मां की बदनामी
पसंद नहीं आएगी उसे।
चुड़की.... वह पुरखों की लड़ाई लड़ेगा
सरकार से
अपना हक मांगेगा
तुम सोच रही हो
फिर उनका भी वही हश्र होगा
जो तुम्हारे पति का हुआ
नहीं चुड़की
वह पुरखों की लड़ाई लड़ेगा
जल, जंगल, जमीन का फैसला
समाज के नाम करेगा
पथरीली राहों के उस पार
एक प्यारा सा जंगल बसाएगा।

❑❑

गांव बारा
डा. बारापलासी
जिला दुमका 814101
मो.09693899588

2-तीतर (जंगलों में रहने वाला पक्षी)
3-हंडिया (चावल से तैयार पेय)

जवाहर लाल बांकिरा की कविताएं

सलवा जुडूम

यह कैसा सलवा जुडूम है
दांतेवाड़ा, बस्तर और कांकेर के अंचलों में
जंगलों-पठारों में पसरी है अजब सी वीरानगी
जहां भूख प्यास और आग ही आग है
नफरत, आंधी-तूफान के बीच
लुटता हुआ मंजर है
रौंद डाली गयी फुलवारियां हैं
आदिवासी अपने ही लोगों की
खून से खेल रहा होली है
एक तरफ नक्सली बनकर
तो दूसरी तरफ एस.पी.ओ.बनकर
अपने लोगों की नरबलि देकर
औरों की खुशियों को आरक्षित करने का
यह कैसा खेल जारी है।
दांतेवाड़ा, बस्तर और कांकेर के अंचलों में।

बिरसा और बेड़ियां

आजादी के साठ साल बीतने के बाद भी
बिरसा को जकड़ी हैं बेड़ियां
कहती हैं आदिवासियों की दर्द भरी कहानियां
कहां खो गईं पुरखों की धरती की खूबियां
वो घने जंगल और बन-बालाओं की अठखेलियां
साल के घने पेड़ और छोटी-छोटी नीली पहाड़ियां
सारंडा और टेबो की घाटियों की शान्त वीरानियां।

रत्नगर्भा धरती का निवासी
समझ न पाया तू सियासी
तू भोला का भोला रह गया
स्वयं विष पीकर औरों को अमृत दिया।

लेकिन यह क्या बिरसा! तेरे हाथों में बेड़ियां
क्रूर समय ने तूझे पहना दी हथकड़ियां
तेरे हिस्से आई हैं बेशुमार परेशानियां
सुनाई नहीं देती अब तेरी बांसुरी की स्वर-लहरियां।

ठगा गया, बेचा गया
धमकाया गया, भगाया गया
कभी जंगल काटने के नाम पर
तो कभी कोयला चोरी के आरोप में
जेल की सींखचों के पीछे डाला गया
मुकदमे पर मुकदमा चलाया गया।

बाढ़ग्रस्त टापू की तरह
समस्याओं से घिर गया है तू
बेकारी, बदहाली, पिछड़ेपन और शोषण ने
तूझे जल, जंगल और जमीन से भी वंचित कर दिया
अब तक न आयी तेरे हिस्से ज्ञान की रोशनियां।

हंड़िया के नशे में चूर तेरी कौम को
शायद नहीं मालूम मुक्ति का रास्ता
जिस पर चलकर तूझे
मनचाहा मंजिल मिले
एक छोटी घर खूबसूरत जिंदगी मिले।

हालात ने किया है कितना क्रूर मजाक
अपनी ही जमीन पर तू रह गया कितना अकेला
कहां गये बंदोबस्ती के कानून
और वो धाराएं संविधान की
अब तो बेकार हो गया रे तू
मुख्यधारा ने मोड़ लिया है तूझसे मुंह।

कर्जे के दलदल में डुबा तेरा जीवन रे
जितना तू इससे उबरना चाहे
उतना ही धंसता चला जाए रे
नाचीज बनकर रह गया तू।

बिरसा जो तूने कर दिखाया
वह कितना लोमहर्षक था
डोम्बारी बुरू की घाटियों में
एक-एक तीर बमवर्षक था।

शोषण और अत्याचार के विरुद्ध
तूने दिया था उलगुलान का नारा

अंग्रेजों-दिकुओं ने कर दिया था छोटानागपुर को अशुद्ध,
रसातल पर जाते समाज को दिया था तूने एक सहारा।

पददलितों को जो रास्ता दिखाया
उससे कितनों का उद्धार हुआ
लोगों की जिन्दगी को एक नयी रोशनी मिली
सर उठाकर जीने का एक संदेश मिला।

जो तू न जन्म लेता इस धरती पर तो हे आबा!
जाने किस हालात में हम जी रहे होते
जिंदगी गुमनाम गलियों में भटक रही होती
एक आदिवासी की कोई पहचान नहीं होती।

क्या खूब तेरा दर्प था
दुश्मनों को भी इसका अहसास था
पराधीनता की बेड़ियों को
पराक्रम से झकझोरा था।

इज्जत और जन्मभूमि की खातिर
तूने अंग्रेजों को ललकारा था
जहरीले तीरों को प्रत्यंचा में चढ़ाकर
दुश्मनों को निशाना बनाया था।

उलीहातु, चलकद, आयुबहातु और बंदगांव की मिट्टी से,
आज भी प्रतिक्रिया की रासायनिक महक
फिजाओं में घुली हुई मिलती है
जो उलगुलान की यादों को ताजा कर जाती है।
डोम्बारी और सांइल रकब की घाटियों में
'हेन्दे रम्बा केचे-केचे, पुण्डि रम्बा केचे-केचे' की गूंज
आज भी ध्वनि-तरंग बनकर प्रतिध्वनित होती है
जो उलगुलान की याद को ताजा कर जाती है।
जिस मातृभूमि के लिए तूने बलिदान दिया
आज उसी अंचल के वन-पुत्र
बेड़ियों से जकड़े हुए हैं।

कौन चलाएगा उनके लिए उलगुलान
कौन बोएगा उनके लिए परिवर्तन के बीज
कौन परिचित कराएगा उन्हें रोशनी के अनन्त आकाश से।

बोलो बिरसा बोलो
अपनी खामोशियों को तोड़ो
अपनी बेड़ियां खोलो
मंजिलों को पाने के लिए
नये रास्तों को तलाशो।

❑❑

एल.आई.सी.गढ़वा शाखा
पोस्ट/जिला गढ़वा 822114
मो.9934841547

शब्द संकेत

सारंडा और टेबो- घाटियों के नाम (दक्षिणी झारखण्ड में अवस्थित)
डोम्बारी बुस - डोम्बारी पहाड़, बिरसा आंदोलन का अतिमहत्वपूर्ण स्थल
छोटानागपुर - आज का दक्षिणी झारखण्ड
हे आबा - बिरसा के लिए संबोधन
उलीहातु, चलकद, आयुबहातु और बंदगांव- बिरसा आन्दोलन के महत्वपूर्ण स्थल
उलगुलान- आन्दोलन
साइंल रकब- घाटियां
'हेन्दे रम्बा केचे-केचे, फण्डि रम्बा केचे-केचे' - अंग्रेजों को काटो और शोषकों को काटो

दिनेश कुशवाह की कविताएं

एकलव्य की तरफ से

(अपनी कक्ष के मेधावी छात्र

ईंट मजदूर रामविलास के लिए)

ग़ज़ब की राम माया है
ये कैसी धूप छाया है
कि जिनके पास फंदे हैं
उन्हीं के पास दाना है।
भला क्या भेष धारे हैं
वे सारा देश तारे हैं
कि उनकी कोठियों और
थालियों में भरा सोना है।
ये कैसी अग्निदीक्षा है
कठिन कितनी परीक्षा है
कि कोदो की पढ़ाई में
किसी नर का अंगूठा है।
ये गीता भी उन्हीं की है

गदा-गांडीव जिनके हैं
जो अपने थे वे गूंगे थे
यही तो रोना, रोना है।
मगर जब बात बोलेगी
तो कितने भेद खोलेगी
तुम्हारा बोलना भी
इस सदी में तंत्र-टोना है।

❑❑

सांप

(इस देश के क्रान्तिकारियों और दलितों के लिए)

ज़िन्दगी बड़ी कठिन है बेटे अपने आप में
बुदबुदाया बूढ़ा संपेरा
पिटारे में बन्द सांप से
ज़िन्दगी तमाशा नहीं है
पर तमाशा ज़रूरी चीज़ है ज़िन्दगी के लिए।
भरम गया सांप
सचमुच संपेरे
ज़िन्दगी को दूरबीन से देखते हैं।
उस रात पहली बार सांपिन को
सांप की उदास आंखों का सपना आया
लाठी-डंडों से बारहा छिजकर
सांपिन ने जाना
कि डरे हुए और उपयोगितावादी मन को
दुनिया की कोई आंख नहीं बांध सकती
भले होती हों मोहक आंखें सांप की।
सांप जानता है
किस तरह अभियोग लगाकर
बिलों में छिपने के लिए मजबूर किया जाता है
नहीं तो काटता तो हर प्राणी है
चींटी हो या आदमी।
सांप जानता है
इतिहास के हाशिये पर
कैसे चली जाती है कोई क़ौम?
कि उसकी जाति पर
क्यों बने हैं इतने कुत्सित मुहावरे?
सांप जानता है
कि दुनिया में सिर्फ़ मुंह से नहीं लड़ा जा सकता
कि वध के समय लोग
क्यों कुचल देते हैं उसका फिर।
अपने झपट्टों, दंशों और फुफकारों के बावजूद
सांप जानता है लम्बी रीढ़ की ज़िन्दगी का दुख।

❑❑

हिन्दी विभाग
अ.प्र.सि. वि.वि, रीवा म.प्र.
मो. 9425847022

अशोक सिंह की कविताएं

पहाड़ पर बैठे एक आदिवासी प्रेमी-युगल की बातचीत

अब हम कहां मिलेंगे फूलमनी किस जंगल
किस पहाड़ पर मिलेंगे हम दोनों !
गांव के पिछवाड़े का सारा जंगल
कट गया धीरे-धीरे
अब तो पहाड़ भी काटे जा रहे हैं!
देखो न, पिछले कुछ सालों में ही
न जाने कहां गायब हो गये इतने सारे पहाड़!
थोड़े बहुत, जो बचे-खुचे हैं
वे हो गये हैं नंगे और बदरंग
इक्के दुक्के जो रह गये अछूते कहीं दूरदराज में
सुना है, वहां नक्सलियों का डेरा है
खतरे से खाली नहीं है वहां हमदोनों का मिलना
पता नहीं कब कोई पुलिस वाला
नक्सली कहकर पकड़ ले जाय हमें
जैसे अभी हाल में ले गये
काठीकुण्ड के सालदाहा पहाड़ी से
रूपलाल और निरोजनी को पकड़कर
अब वह समय नहीं रहा फूलमनी
नहीं रह गया वह सब कुछ अपना
यह जो बस्ती की सीमा पार
छोटी सी कुरूवा पहाड़ी भी थी अपनी
जिस पर कभी मिल लेते थे हमदोनों
गाय-बकरियां चराने के बहाने
अब वह भी 'सृष्टि उद्यान' में बदल गया
जहां न तो वे पलास के पेड़ रहे

न बांसों की झुरमुट
कंटीले तारों के बाड़ लग गये हैं
लग गया है गेट पर कड़ा पहरा वहां
अब वह पहाड़ी हमारी नहीं रही फूलमनी
मनोरंजन पार्क में बदल गयी है
बाबूओं के बच्चे बहू-बेटियों के लिए
जहां हम जैसों को अंदर जाने की मनाही है
देखा नहीं उस दिन
जब उसके पिछवाड़े बैठ हम दोनों
बतिया रहे थे अपना सुख-दुख
किस तरह पहरेदार ने चोरी के नाम पर
डांट कर भगाया था हमें!
अब ऐसे में जब कहीं कोई सुरक्षित जगह
नहीं बची हमारे मिलने की
तुम्हीं बताओ फूलमनी
हम कहां मिलें तुमसे
किस जंगल
किस पहाड़ पर मिलें हम दोनों

❏❏

नक्सली जंगल में रह रहे एक आदिवासी दम्पति की व्यथा कथा

हमारा यह जंगल
अब जंगल नहीं
जेल बन गया है चुड़की
जहां कैद होकर रह गये हैं हम सब
अपने ही घर-गांव में
कहां जायें किधर जायें
जंगल के अंदर पहरा है
जंगल के बाहर भी
कैसे अजीब हालात हैं
बंदूक के डर से
बंदूकों के साये में छुपे बैठे हैं हम सब !
कोई बंदूक का डर दिखा
थमा रहा है हमारे हाथों में बंदूक
कोई हमारे घरों में
बंदूक छिपे होने की बात करता
घसीट ले जा रहा है हमें।
हम नहीं जानते चुड़की
यह सलवा जुडूम और ग्रीन हंट क्या है
जानते हैं तो बस इतना
नहीं हमारा कोई सच्चा हितैषी
हम पीसा रहे हैं दो पाटों के बीच
विकास के नाम पर
किस पर करें भरोसा
उस पर, जो अपनी जात-बिरादरी की दुहाई देता
सदियों से विकास के नाम पर छल रहा है हमें
कर रहा है अपना विकास?
या फिर उस पर
जो हमारे बीच आकर पहले
हमारी खुशहाल जिन्दगी का वादा करता है
फिर अगवा कर ले जाता है
हमारे भाईयों और बेटों को
सड़कों और पुलों को उड़ाता है
गांव के स्कूलों को भी नहीं छोड़ता
और तो और
हमारी बहु-बेटियों को भी
उठा ले जा रहा है?
कैसी विडम्बना है
कल तक जंगलों में उन्मुक्त लकड़ियां बिनती
पानी लाती हमारी बहू-बेटियां
आज डरी सहमी घर में भी सुरक्षित नहीं हैं !
गाय-बकरियों के पीछे भागते
हंसते-खेलते हमारे बच्चे
हमारी गोद में दुबके पड़े हैं !
हम बाघ भालू से नहीं डरते चुड़की
चोर लूटेरों से भी नहीं लगता डर
डरते हैं तो बस
नींद में दूर से आती बूटों की आवाज से
हम भूखे रह लेंगे
गुजार लेंगे झोपड़ी में ही सारा जीवन
काट लेंगे अंधेरी रात
एक दूसरे की आंखों में जलते
टिमटिमाती ढिबरी की

जलती-बुझती लौ की रोशनी में
पर विकास के नाम पर इस तरह
बंदूक के साये में नहीं रह सकते चुड़की नहीं रह सकते
अपने ही घर गांव में कैद होकर इस तरह !'

❑❑

जनमत शोध संस्थान, पुराना दुमका केवटपाड़ा
दुमका-814101 (झारखण्ड)
मो. 431339804

सुशीला पुरी की कविता

थारू औरतें

वे थारू औरतें हैं
जो आती हैं हर साल
रोपती हैं धान
गाती हैं गीत भरी आंखों से
और बंजर धरती सी
खेतिहर हो पाने की उनकी आस
नहीं उगा पाती
दूब का एक तिनका भी
उनकी नियति में धंसी होती है
कुछ खानाबदोश पगडंडियां
कुछ जमीनें
जो छीन ली गई उनसे
उन्हें भूख की सौगात देकर
वहां पल पल छली जा रही
उनकी अस्मिता की चीखें होती हैं
साथ ही साथ
महुवाई गंध में लिपटे उनके पैरहन भी
जो रोज रोज नीचे जाते हैं
द्रोपदी की लाज की तरह
वे भटकती हैं इस गांव से उस गांव
अंजुरी भर जीवन
और अपने दुधमुंहों को
पुरानी धोतियों से बांध
पीठ पर लादे
खुद्दी चावलों से
वे बनाती हैं जांड[1]
और सुबह से रात तक
उसके बजबजाते खमीरी नशे में
उदास चिड़ियों सी खोजती हैं
अपना कुल गोत्र
इस डाल से उस डाल
वे मन ही मन बुदबुदाती हैं
एक ऐसी प्रार्थना
जिसमें ईश्वर की कोई शक्ल नहीं होती
वहां होती है
सियारों की हुक्का हुआं
और ठिठुरती रातों के सन्नाटे
उनके सपनों की कराहों से
उड़ जाती है पास बहती नदी नींद
और थरथराते हैं पहाड़

1 एक नशीला पेय

❑❑

सी-479/सी
इंदिरानगर, लखनऊ।
मो. 9451174529

शशिभूषण मिश्र की कविता

'हमें असभ्य रहने दो'

हमें मत भगाओ यहां से
बाबा आदम के जमाने से
जब शायद तुम भी नहीं आए थे यहां
तब से इसी मिट्टी और इसी जंगल में
जीती आयीं हैं हमारी कई-कई पुश्तें।
मत विस्थापित करो हमें

हमारे पुरखों के श्रम-जल का सोता
फूटेगा जरूर इक दिन
और सब कुछ कर देगा हरा-भरा
खुद करने दो तैयार हमें
हमारे आगामी इतिहास का नक्शा....

ये नदियां हमारी नहीं हैं
ये जमीन, हवा हमारी नहीं है
ये घासों के झुण्ड, ये पलाश फूल
ये सब हमारे नहीं हैं
यही कहते हुए घुस आए हो तुम हमारे बीच

और बहुत सारी चीजों की तरह
हमें भी खत्म करने आए हो तुम....

अपनी सभ्यता के बर्बर हथियारों से
हमारे आश्रय स्थलों को वीरान कर दिया तुमने
बंजर कर दिया कंदमूल उगाने वाली धरा को
सदियों से जिस नीड की छांव में
हमने मिलकर बांटे हैं सुख-दुख एक साथ
जो रहे हैं हमारे घर, आंगन
जो त्यौहारों में उमंग से नाचे हैं हमारे साथ
सब कुछ मिटाते जा रहे हो तुम....

हमारी प्यास बुझाने वाले झरने
जिसके कलकल संगीत में नहाकर
हम लड़ते थे असंख्य बीमारियों से
तुमने उन सबके निशान मिटा दिए
और यहां तक कि हमारी तरो ताजा हवा को भी
सांस लेने लायक नहीं रहने दिया तुमने
तुम्हारे जहरीले पंजों से
अब कुछ भी नहीं बचा मुकम्मल....
तुम भेड़िए हो
हिंसक और खतरनाक ऐसे भेड़िए
जिसकी भूख कभी खत्म नहीं होगी
निर्दयता से एक दिन
सब कुछ निगल जाओगे तुम...
तुम्हारी भूख के भूगोल से
हमारी भूख का इतिहास और वर्तमान
सिमटता गया है दिनोदिन
तुम्हारी इस बर्बर भूख का रहस्य
सचमुच हमारी समझ के बाहर है...

हमारी स्मृतियों
हमारी जीवन शैली
खानपान, जातीय प्रथाओं
हमारी भाषा और बोलियों को
जड़ से उखाड़ने आए हो तुम...

कहां जायें हम?
कहीं भी जाकर हम नहीं जी सकते
क्योंकि
हमने नहीं सीखा तुम्हारी तरह
जीवन का गणित
हमने तो बस जीवन के मंगलगीत गाये हैं
ढोल, मादल की थापों के साथ
उत्सव मनाते हम
यहां के रूप, रंग और गंध में
एकतान हो गए हैं...
हमें रहने दो असभ्य, आदिम और जंगली
नंगे और भूखे रहकर भी बहुत खुश है हम
स्याह रातों और भयावह रिक्तता के
पर्याय हो चुके शहरों में
हमें मत तब्दील करो।

❑❑

सहायक प्राध्यापक (हिन्दी)
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
फतेहाबाद, आगरा
मो.9457815024

यश मालवीय का गीत

चुप,जल-जीवन जंगल-ज़मीन

ख़ामोश हवा
ख़ामोश फिजां
चुप, जल-जीवन, जंगल-ज़मीन
अपना हक़ बढ़कर छीन यार
अपना हक़ बढ़कर ज़रा छीन
सिर पर छाया है आसमान
सब अपने हैं दुनिया-जहान
अपनी आंखें, अपनी धरती
कैसी संसद, क्या संविधान?
तू बोल ज़रा
मुंह खोल ज़रा
पा ले अपना खोया यक़ीन
तू जिजीविषा का महागान
तुझसे संध्या, तुझसे विहान

सांसों में सजे समय-सरगम
तू आदियोग वाला वितान
हो आग ज़रा
तू जाग ज़रा
पलकों से सपने बीन-बीन
शासन फैलाए जात-पात
सारी जनता है दाल-भात
छीनी उसने होली-ईदें
छीने मंगल या जुमेरात
तू जान ज़रा
पहचान ज़रा
वो हद दर्ज़े का है कमीन
तू मुहिम छेड़, तू मुहिम छेड़
तू चल खेतों की मेड़-मेड़
हर मौसम तेरा अपना है
तू क्यों हो हांकी गयी भेड़?
तू फूल खिला
घर गांव ज़िला
बिखरा दे मुस्कानें महीन

❒❒

अनूप अशेष का गीत
'वह आदिवासी-सी सहज लड़की'

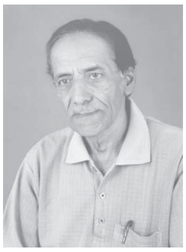

क्यों नहीं रख देती वह
अपने आइने में
आंखों की भटक।।
धान की गंध में गेहूं की
फूल-बालों में,
उठा लाती है
भर-टोकरी बासी कपड़े
पांव-भर नदी
छोटे नालों में।
देह की ताप रही ओढ़े-सी
किसी के सूपे में
अपनों-सी फटक।।
छूट जाती है कभी चलते
चलते ही गली,
हाथ में हंसिया
पांव में कीचड़
किसी सपने-सी खेतों
जाती चली।
घास की नोक चुभा तलबों में
आंख की किरकिरी बन
मर्दों की टटक।।
आम्र बौर ताजी हवा
कांखों का पसीना,
धूप में हांफी
हुई दुपहर-सी
उसके जांगर का महीना।
आग तवा पिसान उम्र
गाढ़ी-महक की है
एक श्याम-घटक।।
तेंदू के पत्तों खलिहानों की
चुराई-हंसी,
देह-सी टूटती
हुई चलती
प्यास किसी झरने की
पहाड़ी बसी।
बांसुरी-सी बजी विराने की
लौट जाती है गांव
नीचे भटक।।
चांद सुकवा से बात आधी
आधी-रात करे,
सुबह के ओठों हंसे
हीरा-हंसी
बोलों में रस भरे
महुआ-सी रसे।
वह आदिवासी-सी सहज लड़की
कंजी-आंखों में
रही जिन्दा खटक

❒❒

अतुल मेडिकल स्टोर, हास्पिटल रोड,
सतना- 485001 (म.प्र.)
मो0- 09424934472